IJCRT.ORG ISSN : 2320-2882

INTERNATIONAL JOURNAL OF CREATIVE RESEARCH THOUGHTS (IJCRT)

An International Open Access, Peer-reviewed, Refereed Journal

भारतीय ज्ञान परम्परा एवं सामाजिक न्याय

प्रो. सोहन लाल
सह–आचार्य (शोधार्थी)
राजनीति विज्ञान विभाग,
राजकीय डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर

(डॉ.) मैना निर्वाण
आचार्य,
राजनीति विज्ञान विभाग,
राजकीय डूंगर महाविद्यालय, बीकानेर

शोध सार :

भारतीय ज्ञान परम्परा में निहित सामाजिक न्याय की अवधारणा का विश्लेषण वैदिक साहित्य, उपनिषद, महाकाव्यों, जैन एवं बौद्ध दर्शन, भक्ति आन्दोलन तथा आधुनिक भारतीय चिंतकों के विचारों के माध्यम से सामाजिक न्याय के विकासक्रम का अनुशीलन है। अध्ययन से ज्ञात होता है कि भारतीय ज्ञान परम्परा समानता, करुणा, अहिंसा, सत्य, कर्तव्य, नैतिकता तथा लोककल्याण इत्यादि सामाजिक न्याय के मूल्यों पर अवलम्बित है। यद्यपि प्राचीन समाज में वर्ण व्यवस्था और सामाजिक असमानताएँ विद्यमान थीं, शास्त्रीय विशेषाधिकार और निर्योग्यताओं, जन्मजात एवं वर्गीकृत विषमताओं तथा सदियों की मानसिक तथा शारीरिक गुलामी ऐसे तथ्य है जिनके चलते भारत में सामाजिक न्याय एक दुर्लभ और दुसाध्य लक्ष्य प्रतीत होता है, फिर भी अनेक संतों, समाज सुधारकों तथा विचारकों ने समरसता, मानव गरिमा और समान अधिकारों (संपोषी समाज) की स्थापना पर जोर दिया। निष्कर्षतः भारतीय ज्ञान परम्परा सामाजिक समावेशन, मानवाधिकार, समान अवसर तथा नैतिक जीवन के माध्यम से सामाजिक न्याय की स्थापना के लिए वर्तमान में प्रासंगिक और प्रेरणादायक आधार प्रदान करती है।

शब्ज कुंजी – भारतीय ज्ञान परम्परा, शास्त्रीय विशेषाधिकार, निर्योग्यताएं, सामाजिक अन्याय, संपोषी समाज।

शोध आलेख

वैदिक युग से प्रारंभ होकर वर्तमान दार्शनिक वैचारिकी में न्याय को भिन्न भिन्न अर्थों में विश्लेषित किया गया है। साधारण भाषा में न्याय को '**जैसी करनी, वैसी भरनी' (Tit for Tat)** के पिछले जन्मों के संचित कर्मों के रूप में न्याय को समझा जाता है। यह दर्शन न्याय में समस्त सद्गुण सम्मिलित होते है, के सिद्धांत को मान्यता देता है। पूर्वात्या दर्शन में सामाजिक न्याय का संकल्पना एकत्व पर आधारित है हालांकि प्रत्यक्षतः सामाजिक न्याय का जिक्र भारतीय दर्शन में दिखाई नहीं पड़ता है परंतु अप्रत्यक्षतः धर्म एवं नैतिकता, अधिकार एवं कर्तव्य, परहित–परमार्थ, पाप–पुण्य, सदाचार, पंच–महाव्रत, अष्टांगिक मार्ग, अहिंसा, स्वधर्म, निष्काम कर्म, आत्मा के स्वरूप, प्राकृतिक नियम (जैसा तुम दूसरों से चाहते हो कि वे तुम्हारे साथ व्यवहार करें, तुम दूसरों के साथ वैसा ही व्यवहार करे) आदि सामाजिक न्याय के भारतीय प्रतिमान है।[1]

आत्मनः प्रतिकुलानि परेषां न समाचरेत।

(पदम पुराण सृष्टि खंड 1.19((333–336)

भारतीय ज्ञान परम्परा – भारतीय ज्ञान परंपरा इस देश की बहुस्तरीय, बौद्धिक, दार्शनिक, सांस्कृतिक, वैज्ञानिक और आध्यात्मिक ज्ञान से सराबोर, आत्ममंथन, आत्मनियंत्रण, आत्मसंयम, करूणा, लोककल्याण, परहित–परमार्थ, मान–मर्यादा, स्व से परे सामाजिक उत्तरदायित्व, प्राण जाए पर वचन न जाए की निरंतर प्रवाहित होने वाली एक परंपरा है जिसका उद्देश्य ज्ञान को जीवन, प्रकृति, समाज एवं जन कल्याण में समाहित करना है।[2] इसमें शिक्षा को व्यक्तित्व के बहुमुखी विकास एवं चरित्र निर्माण का साधन माना जाता है। प्राचीन भारत की शिक्षा में केवल औपचारिक शिक्षा को महत्व न देकर ज्ञान, आचरण, अनुशासन, नैतिकता, आध्यात्मिकता के साथ समाज के प्रति उत्तरदायित्व को आत्मसात करने पर बल दिया जाता था।

भारतीय ज्ञान परंपरा की विशेषताएं–

- इसमें शरीर, मन, बुद्धि, आत्मा, समाज एवं प्रकृति को परस्पर संबंधित माना जाता है।[3]
- ज्ञान का उद्देश्य व्यक्ति के व्यवहार, चरित्र के बल पर जीवन को सार्थक करना है।
- गुरू शिष्य परम्परा, ज्ञान के संरक्षण एवं हस्तांतरण की प्रक्रिया को समृद्ध बनाती है।
- चिंतन, तार्किक संवाद तथा अनुभव आधारित ज्ञान को प्रोत्साहित करती है।[4]
- मानव–प्रकृति के सहअस्तित्व पर बल[5]
- ज्ञान को स्व के विकास के साथ–साथ परहित–परमार्थ के साथ संबंद्ध करना है।

वैदिक युग में सामाजिक न्याय

संगच्छध्वं संवद्धवं मनासि जानताम्।

(ऋग्वेद 10.191.2)

अर्थात् तुम मिलकर चलो, तुम मिलकर विचार–विमर्श करो, तुम्हारे मन एक समान ज्ञान एवं उद्देश्य से युक्त हो।[6] इस स्वरूप में सामाजिक जागृति को विकासमान करने का प्रयत्न किया गया। वहीं औपनवैशिक काल में उस सामाजिक एकत्व की जाग्रति के लिए दार्शनिक आधारस्तंभ तैयार किए गए। सामाजिक न्याय की वैचारिकी को प्राचीन काल में सर्वप्रथम चातुर्वण्य प्रणाली से संबंधित किया गया। इस वैदिक संकल्पना में समाज को चार वर्णों में विभाजित किया गया यथा ब्राह्मण, क्षेत्रिय, वैश्य, शुद्र। इसे दिव्य सामाजिक व्यवस्था की संज्ञा दी गई। इसीलिए हिन्दू धर्म ग्रंथों ने इस वैचारिकी को पल्वित–पोषित किया। इस व्यवस्था को एक दिव्य पवित्र तथा अकाट्य संस्था का स्वरूप प्रदान करने में सभी हिन्दू ग्रंथों– ब्राह्मणों, आरण्यकों, धर्मशास्त्रों, स्मृतियों, उपनिषदों, महाकाव्यों एवं पुराणों में कल्याणकारी सिद्ध करने का प्रयास किया गया। ऐसी मान्यता दी गई कि वर्ण व्यवस्था न केवल मानव स्वभाव के अनुकूल है, अपितु सामाजिक न्याय के औचित्य को भी पूरा करती है। मानव अपने सामाजिक कर्तव्यों के निर्वाह के साथ साथ भावी जीवन को सर्वोत्तम बना सके। इसलिए वर्ण व्यवस्था के साथ चार आश्रमों को सम्मिलित कर इसे वर्णाश्रम का नाम दिया गया, जिसे वैयक्तिक एवं सामाजिक जीवन में अपनाया जा सकता है। यह व्यक्तिगत एवं सामाजिक दोनों का एकत्व दृष्टिकोण है। इससे ही सामाजिक न्याय के आदर्श को पाया जा सकता है। इस तरह वर्णाश्रम के विचार को न्यायसम्मत मानवीय जीवन के रूप में देखा गया।

ऋग्वेद एवं सामाजिक न्याय

यह सर्वविदित है कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है। वेदों के पश्चात् का समस्त साहित्य वेदों के महत्व का गुणगान करते है।

अनन्ता वै वेदाः

अर्थात् निश्चय ही वेद अनन्त है।

एहि इतं विद्धि अयं वै सर्वा विद्या इति।

अर्थात् वेद अनंत है। आओ इसे जाने इसमें सब विज्ञान है।[7]

ऋग्वेद में सम्पूर्ण सूक्तों की सं.10.28(8) है और यह दस मण्डलों से विभाजित है। इसके तीन भाग है, पहला अग्नि संबंधी मंत्रों, दूसरा इन्द्र संबंधी मंत्रों, तीसरा वरूण, विष्णु, मरूत, रूद्र आदि संबंधी मंत्रों का विवरण है।

औपनिषदिक एवं सामाजिक न्याय

ईशावास्योपनषिद में कहा गया है जो सभी प्राणियों को अपने में और अपने को सभी प्राणियों में देखता है। इसी भाव के कारण वह किसी से नफरत नहीं करता है। औपनिषेदिक काल से यही एकत्व का भाव सामाजिक न्याय का आधार स्तंभ रहा है। तत्वमसि[8] और अह्मब्रह्मास्मि[9] भी जीव और ब्रह्म के एकत्व का भाव प्रकट करते है अर्थात् सभी में परमपिता परमात्मा का अंश है, ऐसा मानना कि सभी समान है कोई ऊँचा–नीचा नहीं है। किसी को कष्ट न देकर अहिंसा के पालन का भाव सामाजिक न्याय की स्थापना करता है।

महाकाव्य काल एवं सामाजिक न्याय :

संस्कृत भाषा में वाल्मिकी द्वारा रामायण तथा महर्षि वेदव्यास द्वारा महाभारत, महाकाव्य रचित किए गए। इन महाकाव्यों द्वारा भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता को एक नई दिशा प्रदान की गई। इन ग्रंथों में केवल युद्धों की ही विवेचना नहीं है अपितु सामाजिक विषमताओं, स्त्री, उपेक्षित एवं वंचित वर्ग की परिस्थिति के साथ–साथ धर्म एवं राजनीति पर विस्तृत विवेचन किया गया है। रामायण में श्रीराम के चरित्र को मर्यादा पुरूषोतम के रूप में विवेचित किया गया है। वे न्याय एवं धर्म के प्रतीक बताए गए है। एक शूद्र तपस्वी शंभुक की हत्या का प्रसंग तत्कालीन, सामाजिक अन्याय को उद्घाटित करता है।[10] श्रीराम एवं सीता के त्याग के प्रसंग प्रजाहित को व्यक्तिगत हित पर तरजीह देते है। महाभारत में द्रौपदी का सभा में अपमान, कर्ण का जीवन संघर्ष यह सिद्ध करता है कि लैंगिक एवं

जातीय विभेद के कारण प्रतिभावान को अपमान के घूंट पीने पड़ते है। महाभारत का युद्ध सत्यमेव जयते को चरितार्थ करता है, अन्याय पर न्याय की जीत को रेखांकित करता है। महिलाओं की स्थिति पुरूषों की तुलना में पिछड़ी हुई थी, फिर भी सीता, द्रौपदी, कुंती जैसी महिलाएं अपने निर्णयों में सशक्त दिखाई पड़ती है, वहीं तमाम सामाजिक, धार्मिक, विद्रुपताओं के बावजूद भी कर्ण महान योद्धा बनें।[11] महाकाव्य काल सामाजिक न्याय के नैतिक चिंतन की नींव का प्रतीक है।

मनुस्मृतिकाल एवं सामाजिक न्याय

स्मृति को धर्म संहिता माना गया है स्मृति शब्द स्मृ धातु प्रत्यय के योग से उत्पन्न है जिसका आशय है स्मरण करना। याज्ञवलक्य ने 25 धर्मशास्त्रकारों में मनु को प्रथम माना है। मनु ने वैदिक ऋषियों के पदचिह्नों पर चलते हुए व्यक्ति और समाज दोनों का समान रूप से उत्थान हो इसके लिए आदर्श सामाजिक व्यवस्था की रचना की। सामाजिक न्याय के लिए इस व्यवस्था का उद्देश्य प्रत्येक मानव को समाजोपयोगी बनाना, सत्य बोलना, चोरी न करना, पवित्र रहना और इन्द्रियों का संयम करना है। जो मानव–मानव में भेदभाव पैदा करती है, इसलिए व्यक्ति विशेष की श्रेष्ठता एवं निकृष्टता का निर्धारण जन्माधारित करती है। मनु द्वारा प्रतिपादित वर्णाश्रम व्यवस्था सामाजिक न्याय के सिद्धांत के प्रतिकूल है।[12] मनु द्वारा वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था निम्न प्रकार से की है–

ब्राह्मण– ब्राह्मण जिसे मनु ने देवतुल्य माना है एवं राजा को चेतावनी देते हुए कहा गया है कि राजा ब्राह्मणों पर कभी भी क्रोध न करें, क्योंकि ब्राह्मण के कुपित होने से सेना और वाहनयुक्त राजा को तत्काल नष्ट कर दिया जाता।[13] ब्राह्मण का कर्म वेदाध्ययन, अध्यापन, यज्ञ करना, यज्ञ कराना, दान देना एवं दान लेना है। पाराशर स्मृति के अनुसार जो ब्राह्मण वेदाध्ययन नहीं करते वह शुद्र के समान है।

क्षत्रिय – क्षत्रिय शासन करना, प्रजा की रक्षा करना, युद्ध करना,सुख भोग में तल्लीन होना क्षत्रिय के कर्म है क्षत्रियों को सदैव ब्राह्मणों के परामर्श पर ही कर्म करना चाहिए।[14] अन्य लोगों पर अत्याचार आदि के अनर्थ से बचने के लिए ब्राह्मणों के सहयोग से धर्मानुकूल शासन करना चाहिए।

वैश्य – अर्थव्यवस्था का संचालन पशुओं की रक्षा, दान देना, यज्ञ करना व्यापार खेती करना वैश्य के धर्म है।[15] मनु ने वैश्यों को अन्नाध्यक्ष कहा है धैर्यपूर्वक धन बचाकर सभी प्राणियों को अन्न दान करना वैश्य का उत्तरदायित्व होता है।

शुद्र– शुद्र वर्ण का एक ही कर्म बताया गया, वह है द्विज वर्णों की सेवा करना।[16] वेदज्ञ एवं यशस्वी ब्राह्मणों की सेवा से शुद्र को परम कल्याण की प्राप्ति होती है। मनु ने शुद्र को धन संचय करने की मनाही की है। क्योंकि धन संचय करके वह बड़ों के अधीन न रहकर उन्हें अपने अधीन कर का वर्णाश्रम धर्म की व्यवस्था का उल्लंघन करने का प्रकल्प कर सकते है। शुद्र केवल सेवा धर्म के द्वारा ही मानव जीवन में ऊंचे लक्ष्य (आत्मदर्शन) पर पहुंचकर अपने जीवन को सार्थक कर सकता है।

चार्वाक दर्शन एवं सामाजिक न्याय – प्राचीन भारत की वर्णाश्रम धर्म व्यवस्था में निहीत सामाजिक न्याय की संकल्पना से असहमत होते हुए चार्वाक, जैन बौद्ध को न्याय के मानवतावादी आधार का समर्थन किया। इन्होंने शुद्र को कठोर बंधनों में बांधने का कोई औचित्य नहीं समझा। इन्होंने किसी दिव्य शासन अथवा वैदिक सिद्धांत को सामाजिक न्याय के हितार्थ स्वीकृति नहीं दी और न ही न्याय को ईश्वरीय व्यवस्था तथा गत जीवन के कर्मों से जोड़कर देखा।

जैन दर्शन और सामाजिक न्याय – जैन दर्शन जातिवाद और वर्णवाद का घोर विरोध करता है। उसके अनुसार किसी जाति विशेष में जन्म लेने मात्र से नहीं अपितु व्यक्ति का सदाचार एवं नैतिकता ही उसे श्रेष्ठ बनाता है। कोई पुरूष इसलिए ब्राह्मण नहीं हो सकता कि वह ब्राह्मणी के गर्भ से पैदा हुआ है। कर्म की श्रेष्ठता ही उसे श्रेष्ठ बना सकती है। आधारांग में स्पष्ट उल्लेखित है न तो कोई हीन है और न कोई श्रेष्ठ। वर्णाश्रम धर्म में कठोर रूढ़िवादिता के कारण जिन जातियों का निम्न माना गया वे जैन दर्शन में समाहत है। हरिकेशीबल (चांडाल) मातंगसार्जुन (मालाकार) आदि अनेक निम्न जातियों से महान साधक उत्पन्न हुए है।

महावीर ने आधारांग में कहा ''जब तुम किसी को मारने, सताने या अन्य प्रकार से कष्ट देना चाहते हो तो उसकी जगह स्वयं को रखकर सोचो यदि वही व्यवहार तुम्हारे साथ किया जाता तो कैसा लगता। यदि मानते हो तुम्हें अप्रिय लगता तो समझ लो दूसरे को भी अप्रिय लगेगा। यदि नहीं चाहते कि तुम्हारे साथ कोई ऐसा व्यवहार करे तो तुम भी किसी के साथ वैसा व्यवहार मत करना। उन्होंने कहा कि साधक को सदैव नम्रता का आचरण करना चाहिए। सब पर दया दृष्टि रखी जाए। सूक्ष्मातिसूक्ष्म, क्षुद्रातिक्षूद्र जीव की भी देखभाल और रक्षा की जाए।[17] उनके उपदेशों का आधारस्तंभ समता है।

बौद्ध दर्शन एवं सामाजिक न्याय– बुद्ध दर्शन का उद्देश्य निर्वाण के साथ साथ सामाजिक समानता, स्वतंत्रता, भ्रातृत्व भाव और न्याय को स्थापित करना है। इनके मार्ग के अवरूद्ध कारक वर्ण व्यवस्था एवं जातिवाद है, जिन्हें उन्होंने बड़ी योजनाबद्ध पद्धति से संघर्ष कर सफलता अर्जित की। बौद्ध धर्म में जाति–पांति, ऊँच–नीच एवं वर्ग–भेद का

कोई स्थान नहीं है। सभी लोग इस धर्म के अनुयायी हो सकते है। इसमें नैतिकता और आचरण की शुद्धता पर अधिक बल दिया जाता है। तीनों वर्णों के लोगों द्वारा इस धर्म को अनुगृहीत किया और ब्राह्मणों के वर्चस्व को अस्वीकृत किया। बौद्ध दर्शन में सर्वाधिक उत्पीड़ित वर्ग के प्रति तीव्र अनुराग है। हिन्दू धर्म के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति जन्म के हिसाब से ऊंचा या नीचा होता है। बौद्ध को जन्माधारित ऊंच–नीच का सिद्धांत उतना ही अप्रिय था जितना कि चातुर्वर्ण्य का सिद्धांत। बौद्ध दर्शन का सिद्धांत है किसी व्यक्ति के जन्म से नहीं अपितु उसके कर्म से उसका मूल्यांकन किया जाना चाहिए। इन्हीं सिद्धांतों के कारण डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने 14 अक्टूबर 1956 को हिन्दू धर्म को त्यागकर बौद्ध धर्म को अंगीकार किया।[18]

मध्यकालीन भारत और सामाजिक न्याय – मध्यकालीन भारत में धर्मान्धता, सांप्रदायिकता, निर्धनता, अज्ञानता, अशिक्षा, सामंतवाद आदि ऐसे कई कारक रहे, जिनके कारण समाज से भेदभाव जातीय श्रेष्ठता, जातीय हीनता, छुआछूत जैसी अनेक अमानुषिक विकृतियां बलवती होती गई। अनेक ईश्वरवादी धर्मो के द्वारा न्याय की संकल्पना को ईश्वरीय अभिव्यक्ति के आधार पर निश्चित किया गया। कानून का स्वरूप भी धर्मानुसार किये जाने की बात कही गई। तत्कालीन परिवेश में अनेक संत महात्माओं एवं धार्मिक संप्रदायों के द्वारा सामाजिक न्याय की भावना को सुदृढ़ बनाने का कार्य किया। भगवान की प्राप्ति और मोक्ष की सर्वोच्चता को प्रचारित किया गया। लौकिक जीवन के संदर्भ में समाजिक न्याय को उपेक्षित किया गया। ईश्वरीय भक्ति में सराबोर संत महात्माओं की पलायनवादी प्रकृति इसके लिए उतरदायी थी। क्योंकि उन्होंने पारलौकिक वैचारिकी को महत्व दिया। उनकी मान्यता थी कि इन्द्रियों पर नियंत्रण, इच्छाओं का दमन, भोग विलास का त्याग, पारिवारिक संबंधों से विरक्ति, राग–द्वेष से ऊपर उठकर ही अन्ततः जीवन के अंत के बाद सबके साथ न्याय होगा।

जो सुधारवादी सिद्धांत जैन एवं बौद्ध दर्शन द्वारा हिन्दू धर्म के आडम्बर एवं पाखण्डवाद, जातिवाद, सामंतवाद, आर्थिक शोषण, बेगार इत्यादि कारकों के विरूद्ध शुरू किए थे उन सभी को खत्म किया जा रहा था। सामाजिक अलगाव, धर्मान्धता ,धार्मिक उग्रता, अस्पृश्यता की गंभीर बीमारी ने सामाजिक अन्याय को बढ़ावा दिया। कबीर जी, श्री गुरूनानक देव जी, संत शिरोमणि रविदास जी एवं संत चौखला जी ने जन्माधारित वर्ण, जातीय व्यवस्था एवं इस्लामिक कट्टरता के खिलाफ सामाजिक न्याय का बिगुल बजाया।[19]

कबीर जी के शब्दों में,

''अव्वल अल्लाह नूर उपाया , कुदरत के सब बंदे

एक नूर ते सब जब उपजया, कौन भले कौन मंदे।''[20]

श्री गुरूनानक देव जी के शब्दों,

''मानस की जात सबै एक पहचानबो।''[21]

संत शिरोमणि रविदास जी एवं सामाजिक न्याय

इन्होंने जाति–पांति की बेडियो को तोड़कर ऐसे समाज की कल्पना की, जिसमें मानवीय मूल्यांकन का आधार जन्माधारित न होकर कर्माधारित हो। उन्होंने वर्णाश्रम व्यवस्था, पाखण्डवाद, मूर्तिपूजा इत्यादि का विरोध किया। सामाजिक एवं आध्यात्मिकता से परिपूर्ण 40 शब्दों को श्री गुरु अर्जन देव जी ने श्री गुरु ग्रंथ साहिब में दर्ज किया, जिनमें श्री रविदास जी ने सामाजिक न्याय के समाधान प्रस्तुत किए। संत शिरोमणि रविदास जी के शब्दों में,

''ऐसा चाहूँ राज मैं, जहाँ मिले सबन को अन्न

छोट बड़े सब सम बसै, रैदास रहे प्रसन्न।''[22]

श्री गुरु ग्रंथ साहिब अंग 345 आसा की वार

''एक ही माटी सब घट सिर्जे,एक ही सिरजनहार ।''[23]

श्री गुरु ग्रंथ साहिब अंग 345 आसा की वार

उक्त पंक्तियां सार्वभौमिक समानता का गहरा संदेश देती हैं। वह भारत के तत्कालीन समाज के जातिगत,लैंगिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक भेदभाव को नकारते हुए लिखते हैं,'**सबके शरीर का भौतिक आधार (मिट्टी) एक ही है और सबका आध्यात्मिक स्रोत (ईश्वर) भी एक ही है। रचयिता एक निर्माण सामग्री सामान तो किसी को श्रेष्ठ या हीन (जन्माधारित) ठहराना अन्याय है।** यह उनके सामाजिक न्याय के दर्शन की नींव है,जो सर्वसमावेशी समाज (बेगमपुरा शहर) की कल्पना में परिपक्व हुआ। उनके दर्शन ने जैन–बौद्ध, मध्यकालीन एवं आधुनिक कालीन विभिन्न समाज सुधारको, संत महापुरुषों एवं सामाजिक न्याय के चिंतकों को गहराई से प्रभावित किया। उनकी वैचारिकी आधुनिक संवैधानिक मानको (स्वतंत्रता समानता एवं बंधुत्व) का आधार बनी।

महान सूफी संतो ंके द्वारा सामाजिक भेदभाव के मूल स्त्रोत वर्णाश्रम धर्म के स्वरूप तथा नियमों की आलोचना करते हुए हिन्दू मुस्लिम समुदायों के अमानवीय व्यवहार की कड़ी निंदा की और इस मान्यता को बल प्रदान किया कि ईश्वर के समक्ष सब प्राणी समान है उन्हें समाज में उचित स्थान एवं सम्मानजनक आजीवीकोपार्जन के साधन की सुनिश्चितता होनी चाहिए।

भारतीय ज्ञान परंपरा का विकास वैदिक युग से प्रारंभ होकर मध्यकालीन भारत के भक्ति आंदोलन तक निरंतर ज्ञान के सृजन[24] एवं सामाजिक न्याय के भाव को उद्वेलित करता है। वेदों के द्वारा सामाजिक व्यवस्था का आधार खड़ा किया गया, उपनिषदों में आत्मा–परमात्मा के साथ–साथ ज्ञान के दर्शन पर विमर्श हुआ। महाकाव्यों एवं मनुस्मृति में अधिकार की अपेक्षा, कर्तव्यों पर चर्चा हुई। चार्वाक दर्शन में भौतिकतावादी दृष्टिकोण पर बल दिया गया। बौद्ध– जैन दर्शन में नैतिकता, करूणा, दुःख निवारण एवं मानवतावादी प्रश्नों पर वैचारिकी प्रस्तुत की गई।[25] मध्यकालीन भक्ति आंदोलन के द्वारा सूफी एवं परम्पराओं के द्वारा ज्ञान को मानव को मानव होने के नाते अधिकार दिए जाने की वकालत की गई। इस तरह भारतीय ज्ञान परंपरा बहुआयामी एवं निरंतर चलायमान प्रक्रिया है।

शोध ग्रंथ सूची

1. श्रीपदम् महापुराण (अनुवादक) शिव प्रसाद द्विवेदी 2016 चौखंबा सुभारती, वाराणसी
2. महादेवन बी. भट्ट, बी.आर एवं पावना एन.आर.एन (2022) इन्ट्रोडक्शन टू द इंडियन नॉलेज सिस्टम : कनसैप्टस एंड एप्लीकेशनस, दिल्ली : पीएचआई लर्निंग
3. पूर्वोक्त – 1
4. कपूर के एवं सिंह, ए.के (संपादक) (2021) इंडियन नॉलेज सिस्टम (खंड 1–2) नई दिल्ली : डी के प्रिन्टवर्ल्ड
5. पूर्वोक्त – 2
6. ऋग्वेद (2014) ऋग्वेद संहिता (अनुवाद सहित) नई दिल्लीः संस्कृत संस्थान (मूल रचना : वैदिक काल)
7. शतपथ ब्राह्मण 3. 10. 11 .4
8. ऋग्वेद 10.90.12
9. शुक्ल यजुर्वेद, वाजसनेयी संहिता अध्याय 30 मंत्र 5
10. फुले, ज्योतिबा (1885) गुलामगीरी, सतारा : सत्यशोधक मंडल
11. वनिता,आर. (2022) संस्कृत महाकाव्य में न्याय– धर्म : लिंग, वर्ण एवं प्रजाति पर बहस, न्यूयॉर्क : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
12. कीर, धनंजय (1996) डॉ बाबासाहेब अंबेडकर : जीवन चरित, नई दिल्लीः पापुलर प्रकाशन
13. बूहलर, जी (1886) मनु के विधान (खंड 25) पूर्व के पवित्र ग्रंथ, ऑक्सफोर्ड : कैलेंरेंडन प्रेस
14. पूर्वोक्त–9
15. ओलिवेल, पी (2005 (मनु का विधि शास्त्र : मानव धर्मशास्त्र का आलोचनात्मक संस्करण एवं अनुवाद, न्यूयॉर्क : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस
16. पूर्वोक्त 11

17. मुनी दीपरत्न सागर (अनुवादक) (202)5 श्री आधारंग सूत्र

18. अंबेडकर, बी.आर (1950) बुद्ध और उनका धम्म (पूनर्मुद्रण : 2010, नई दिल्ली : सम्यक प्रकाशन

19. लॉरेन्जेन, डी. एन. (1995). Bhakti religion in North India, Community identity and political action- स्टेट यूनिवर्सिटी ऑफ न्यूयॉर्क प्रेस।

20. दास, श्यामसुन्दर (सं.). (2018). कबीर ग्रंथावली (पुनर्मुद्रित संस्करण). नागरी प्रचारिणी सभा। (मूल प्रकाशन 1928)

21. गुरु गोबिन्द सिंह. (2013). श्री दशम ग्रंथ साहिब. शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी (SGPC)।

22. शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबंधक कमेटी. (2014). श्री गुरु ग्रंथ साहिब. अमृतसरः एस.जी.पी.सी.

23. श्री गुरूग्रंथ साहिब, अंग 345 आसा की वार

24. राधाकृष्णन,एस (2023) इंडियन फिलॉसफी (वोल्यूम 1) लंदन : जॉज एलेन एंड अनविन

25. शर्मा, सी.डी (1960) ए क्रिटीक्ल सर्वे ऑफ इंडियन फिलॉसफी, लंदन : राइडर एंड कंपनी